(2018) 12 एस. सी. आर 868

डॉ. एसके झुनझुनवाला ..... अपीलकर्ता
बनाम
श्रीमती धनवंती कौर एवं अन्य। ..... प्रतिवादी

सिविल अपील संख्या 3971/2011

1 अक्टुबर 2018

[अभय मनोहर सप्रे एवं विनित सरन, न्यायमूर्तिगण]

अभय मनोहर सप्रे, जे.

1. यह अपील राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (एकस्मिनपश्चात् ''राष्ट्रीय आयोग'' के रूप में उल्लेखित) द्वारा नई दिल्ली में प्रथम अपील संख्या 93/2000 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांकित 01.09.2009 के खिलाफ संचालित है। जिसके द्वारा राष्ट्रीय आयोग ने प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा दाखिल अपील को स्वीकृत किया है और शिकायत वाद सं 698/ओ/1997 में राज्य आयोग, पश्चिम बंगाल, कोलकत्ता के आदेश दिनांक 19.01.2004 को अपास्त कर दिया।

2. अपील में शामिल विवाद को समझने के लिए, निम्नलिखित सुसंगत तथ्यों का वर्णन करना आवश्यक है।

3. अपीलकर्ता प्रतिवादी संख्या–1 था, जबकि यहां पर प्रत्यर्थी संख्या –1 शिकायतकर्ता था और इस मामले में प्रत्यर्थी संख्या–2 परिवाद में प्रतिवादी संख्या–2 था, जिससे यह अपील उत्पन्न हुई थी।

4. अपीलकर्ता पेशे से एक डॉक्टर है और 1969 से कलकता में व्यवसाय कर रहा है। वह एक योग्य शल्य चिकित्सक है, जिसे विशेष रूप से पिताशय की सर्जरी में विशेषज्ञता हासिल है। उन्होंने 1968 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एमबीबीएस की डिग्री प्राप्त की और उसके बाद इंगलैंड चले गए और वहां उन्होंने 1976 में एफआरसीएस की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने एक सर्जन के रूप में इंगलैंड के विभिन्न अस्पतालों में सात साल तक काम किया और 1978 में भारत लौट आए और कलकता में बस गए। वह कई अस्पतालों में अतिथि सलाहकार थे, जिनमें से एक कलकता में लाइफ डायग्नोस्टिक सेंटर और नर्सिंग होम (यहां प्रतिवादी नं0–2) था, जहां वह अपने मरीजों के ऑपरेशन करते थे।

5. प्रत्यर्थी संख्या–1 (शिकायतकर्ता) एक महिला, जो प्रासंगिक समय में कलकत्ता में निवास करती थी, उसे जून 1996 में पेट में दर्द महसूस हुआ। इसलिए, उसने स्थानीय डॉक्टर से परामर्श लिया लेकिन उसे कोई राहत नहीं मिली। इसलिए, उसने डॉ लक्ष्मी बसु से परामर्श लिया, जिन्होंने जांच करने पर उन्हें कुछ चिकित्सीय परीक्षण कराने की सलाह दी, जैसे कि एक्सरे, पीए चेस्ट, उपरी पेट का अल्ट्रासाउण्ड, एंडोस्कोपी, रक्त परीक्षण आदि। प्रत्यर्थी संख्या –1 ने, सलाह के अनुसार, ये चिकित्सीय परीक्षण कराए। प्रत्यर्थी संख्या–1 की रिपोर्ट की जांच करने पर, डॉ. बसु ने सुझाव दिया कि उसके पिताशय के लुमेन में दो पथरी है और इसे केवल ऑपरेशन से ही ठीक किया जा सकता है। डॉ. बसु ने तदनुसार प्रत्यर्थी संख्या–1 को किसी अच्छे सर्जन से लेप्रोस्कोपिक सर्जरी कराने की सलाह दी और अपीलकर्ता का नाम सुझाया।

6. प्रत्यर्थी संख्या–1 ने, सलाह के अनुसार, अपीलकर्ता डॉ. एसके झुनझुनवाला से परामर्श किया, जिन्होंने उसकी जांच और उसकी मेडिकल रिपोर्ट के परीक्षण के बाद, डॉ बसु की सलाह से सहमति व्यक्त की और तदनुसार प्रत्यर्थी संख्या –1 को अपनी पित्त की सर्जरी कराने की सलाह दी। अपीलकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या –1 को सर्जरी कराने के लिए प्रत्यर्थी संख्या–2 के अस्पताल में भर्ती होने की भी सलाह दी।

7. दिनांक 07.08.1996 को, प्रत्यर्थी संख्या–1 ने खुद को एक आवासी मरीज के रूप में प्रत्यर्थी संख्या–2 के अस्पताल में भर्ती कराया। दिनांक 08.08.1996 को अपीलकर्ता ने लेप्रोस्कोपी की और इसके बाद ओपन सर्जरी की और प्रत्यर्थी संख्या–2 के पिताशय को निकाल दिया। प्रत्यर्थी संख्या–1 का ऑपरेशन के पश्चात् देखभाल के लिए लगभग एक सप्ताह या दस दिनों तक अस्पताल में थी और उसके बाद उसे छुट्टी दे दी गई।

8. दिसंबर 1997 में, प्रत्यर्थी सं0–1 ने अपीलकर्ता (प्रतिवादी सं0–1) और प्रत्यर्थी सं0–2 (प्रतिवादी सं0–2) के विरू) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (संक्षेप में, ''अधिनियम'') की धारा–10 के तहत शिकायत दायर की जिसमें उसने दिनांक 08.08.1996 को उसके पिताशय की सर्जरी करने में अपीलकर्ता की लापरवाही के कारण सर्जरी के बाद उसे नुकसान, मानसिक पीड़ा और दर्द के लिए मुआवजे का दावा करना। प्रत्यर्थी सं0–1 ने मुख्य रूप से शिकायत की कि सर्वप्रथम, उसने अपने पिताशय की सामान्य सर्जरी करने के लिए कभी सहमति नहीं दी थी, बल्कि उसने केवल लेप्रोस्कोपी सर्जरी करने के लिए सहमति दी थी, लेकिन अपीलकर्ता ने उसके पिताशय की सामान्य सर्जरी की, जिसके परिणामस्वरूप उसके शरीर में कई टांके और निशान लगा दिये गये, दूसरी शिकायत यह है कि की गई सर्जरी भी सफल नहीं रही क्योंकि प्रत्यर्थी सं0–1 उसके बाद कई दिनों तक विभिन्न बीमारियों जैसे पेचिश, भुख न लगना, वजन कम होना, पीलिया आदि से पीड़ित रही, तीसरी शिकायत यह है कि इस कारण से जून 1997 में, सीबीडी में खिसकी पथरी को हटाने के लिए उन्हें दिल्ली के गंगा राम अस्पताल में एक और सर्जरी करानी पड़ी। यह आरोप लगाया गया था कि ये सभी बीमारियाँ अपीलकर्ता की लापरवाही के कारण हुई, जिन्होंने सर्जरी ठीक से नहीं की और बल्कि लापरवाही से सर्जरी की और प्रत्यर्थी सं0–1 के लिए केवल मानसिक पीड़ा दर्द, उत्पीडन और धन की हानि को पीछे छोड़ दिया और इसलिए उपरोक्त वर्णित विभिन्न मदों के तहत मुआवजे की उचित राशि का दावा करने के लिए शिकायत दर्ज की गई।

9. अपीलकर्ता ने अपना जवाब दाखिल किया और अपनी शिकायत में प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा लगाए गए आरापों से इनकार किया। मुख्य रूप से अपीलकर्ता ने अपने जवाब में कहा कि उसने प्रत्यर्थी सं0–1 की जांच करने के बाद उसे पिताशय की सर्जरी कराने की सलाह दी, जिसमें पिताशय को निकाला जाना भी शामिल हो सकता था। यह कहा गया था कि लेप्रोस्कोपिक कोलेसिस्टेक्टोमी करने के लिए प्रत्यर्थी सं0–1 की सहमति सर्जरी करने से पहले विधिवत प्राप्त की गई थी। अपीलकर्ता ने कहा कि लेप्रोस्कोपिक सर्जरी शुरू करने के बाद उसने उसके पिताशय में सूजन और चिपकने का अनुभव किया और इसलिए, वह ऑपरेशन थियेटर से बाहर आया और प्रत्यर्थी सं0–1 के पति को इन तथ्यों का प्रदर्शित किया और उसे बताया कि ऐसी स्थिति में यह लेप्रोस्कोपिक सर्जरी करना संभव नहीं होगा और केवल पारंपरिक सर्जरी प्रक्रिया ही बीमारी को दूर करने का विकल्प है। प्रत्यर्थी सं0–1 का पति अपीलकर्ता द्वारा सुझाए गए विकल्प के लिए सहमति दी और अपीलकर्ता ने तदनुसार पारंपरिक सर्जरी की। प्रत्यर्थी सं0–1 को ऑपरेशन के बाद देखभाल के लिए अस्पताल में कुछ दिन बिताने के बाद छुट्टी दे दी गई। इसलिए, अपीलकर्ता ने प्रत्यर्थी सं0–1 की सर्जरी करने में अपनी ओर से किसी भी प्रकार की लापरवाही या असवाधानी या अक्षमता से

इनकार किया और कहा कि उनके तथा उनके साथ काम करने वाले डॉक्टरों की टीम द्वारा सर्वोत्तम योग्यता एवं क्षमता के अनुसार सभी प्रकार की सावधानियां ली गई थी जो सर्जरी करने के लिए आवश्यक थी।

10. पार्टियों द्वारा अपने अभिवचन में अपने संबंधित मामलों के समर्थन में शपथ पत्र साक्ष्य प्रस्तुत किए । राज्य आयोग ने दिनांक 19.01.2004 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा दायर शिकायत में कोई गुण नहीं पाते हुये खारिज कर दिया। प्रत्यर्थी सं0–1 ने व्यथित होकर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील दायर की।

11. राष्ट्रीय आयोग ने प्रतिवादित आदेश से प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और सर्जरी करने में की गई लापरवाही के कारण प्रत्यर्थी सं0–1 को अपीलकर्ता द्वारा कुल 2 लाख रूपये का मुआवजा भुगतान किये जाने का आदेश दिया। जिसके कारण डॉक्टर एसके झुनझुनवाला (प्रतिवादी सं0–1)ए अपीलकर्ता द्वारा इस न्यायालय में विशेष अनुमति के माध्यम से वर्तमान अपील दाखिल की है।

12. संक्षिप्त प्रश्न, जो इस मामले में विचारार्थ है, वह यह है कि क्या राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रत्यर्थी सं0–1 की अपील को स्वीकृत किया जाना उचित था और इसलिए, अपीलकर्ता (प्रतिवादी सं0–1) को प्रत्यर्थी सं0–1 के पिताशय की सर्जरी करने में लापरवाह ठहराना उचित था और इसके परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी सं0–1 को मुआवजे के रूप में 2 लाख रूपये दिया जाना उचित था।

13. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अतीव कुमार माथुर और प्रत्यर्थी सं0–1 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्रीमती रूपाली सामंत घोष को सुना गया।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, हम अपील को स्वीकृति करने की तरफ झुकाव रखते है और प्रतिवादित आदेश को अपास्त करते हुए निम्नलिखित कारणों से राज्य आयोग के आदेश को बहाल करते है।

15. इससे पहले कि हम इस मामले के तथ्यों की जांच करें, अपील में शामिल विवाद को नियंत्रित करने वाले काननी सिद्धांत पर ध्यान देना उचित है।

16. सवाल यह है कि कैसे और किस सिद्धांत के आधार पर अदालत को एक पेशेवर डॉक्टर की लापरवाही के मामले में फैसला करना चाहिए और उसे उसके चिकित्सीय कृत्यों अथवा उसके द्वारा अपने मरीज को दी गई सलाह के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए जिसके कारण मरीज को डॉक्टर की चिकित्सीय सलाह/उपचार (मौखिक या आपॅरेशन) के कारण कुछ आर्थिक नुकसान, मानसिक और शारीरिक यातना, चोट और पीड़ा अब अनिर्णित नहीं रह गया है और अंग्रेजी निर्णयों की श्रृखंला के साथ–साथ इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा बहुत पहले ही इसका फैसला कर दिया गया है।

17. इस विषय पर कानून की उत्कृष्ट व्याख्या सबसे पहले **बोलम बनाम फ्रिएर्न अस्पताल प्रबंधन समिति** [1957] 1 डबलूएलआर 582 = (1957) 2 ऑल ईआर 118 (क्यूबीडी) के एक प्रमुख मामले में क्वींस बेंच के निर्णय में दी गई है।

18. मैकनेयर जे. ने अपनी राय में कानून को निम्निलिखित शब्दों में व्याख्या कियाः

''जहां आपको ऐसी स्थिति मिलती है जिसमें कुछ विशेष कौशल या क्षमता का उपयोग शामिल होता है, तो यह परीक्षण कि लापरवाही हुई या नहीं, क्लैफाम ऑम्निबस के शीर्ष पर मौजूद व्यक्ति के लिए उस विशेष कौशल का अभ्यास करने और दावा करने का मानक है क्योंकि उस व्यक्ति के पास उच्चतम विशेषज्ञ कौशल नहीं प्राप्त है। मानक का परीक्षण यह है कि सामान्य कुशल व्यक्ति ने विशेष कौशल होने का दिखावा और प्रयोग किया है। यह सुस्थापित कानून है कि यदि वह उस विशेष कला का अभ्यास करने वाले एक सामान्य सक्षम व्यक्ति के सामान्य कौशल का प्रयोग करता है तो यह प्रर्याप्त है।''

19. कानून के उपरोक्त सिद्धांत को बिंघम एल. जे. ने **एकर्सली बनाम बिन्नी** (1988) 18 कॉन एलआर 1 में अपने भाषण में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया और व्याख्या कीः

''इन सामान्य कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक पेशेवर व्यक्ति को ज्ञान के उस भंडार पर नियंत्रण रखना चाहिए जो उसके पेशे के सामान्य सदस्य के पेशेवर उपकरण का हिस्सा बनता है। उसे अपने क्षेत्र में नई प्रगति, खोजों और विकास के ज्ञान में अपने पेशे के अन्य सामान्य मेहनती और बुद्धिमान सदस्यों से पीछे नहीं रहना चाहिए। उसे अपने ज्ञान की कमियों और अपने कौशल की सीमाओं के बारे में वैसी ही जागरूकता होनी चाहिए जैसी एक सामान्य रूप से सक्षम व्यवसायी को होती है। उसे अपने द्वारा किए जाने वाले किसी भी पेशेवर कार्य में खतरों और जोखिमों के प्रति इस हद तक सतर्क रहना चाहिए कि पेशे के अन्य सामान्य रूप से सक्षम सदस्य सतर्क रहें। उसे किसी भी पेशेवर कार्य में अपने पेशे के अन्य सामान्य रूप से सक्षम सदस्यों की तुलना में कम विशेषज्ञता, कौशल और देखभाल नहीं लानी चाहिए, लेकिन इससे अधिक की आवश्यकता नहीं है। मानक उचित औसत का है। कानून के अनुसार किसी पेशेवर व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह बहुज्ञ और भविष्यक्ता के गुणों को मिलाकर एक आदर्श व्यक्ति हो''

20. हमेशा से और आज तक, बोलम के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित कानून का भारतीय न्यायालयों सहित दुनिया भर के सभी न्यायालयों द्वारा इस विषय पर कानून के सही सिद्धांत को निर्धारित करने के लिए लगातार पालन किया जाता है। इसे बोलम टेस्ट के नाम से जाना जाता है।

21. जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, **जैकब मैथ्यु बनाम पंजाब राज्य** [(2005) 6 एससीसी 1] के मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस मुद्दे का परीक्षण किया। मुख्य न्यायाधीश आरसी लाहोटी, (तत्कालीन) ने बेंच के लिए बोलते हुए बोलम के मामले (उपरोक्त) और एकर्सले के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित कानून का व्यापक रूप से उल्लेख किया और इन दो निर्णयों पर भरोसा करते हुए अपनी विशिष्ट लेखन शैली में टिप्पणी की कि बोलम के मामले में कानून के श्रेष्ठ कथन (उपरोक्त) को व्यापक रूप से पेशेवर पुरूषों और विशेष रूप से चिकित्सा व्यवसायी दोनों के लिए आवश्यक देखभाल के मानक के निर्णायक के रूप में स्वीकार किया गया है और इसे भारत में न्यायालयों के समक्ष अनुमोदन के साथ उद्धृत किया जाता है और एक रूप में लागू किया जाता है। चिकित्सीय लापरवाही की दलीलों का परीक्षण करने के लिए कसौटी के रूप में लागू किया जाता है।

22. यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक चिकित्सक हर मामले में मरीज को पूरी तरह ठीक होने का आश्वासन नहीं देगा। एक शल्य चिकित्सक इसकी गांरटी नहीं दे सकता है और न ही इसके गारंटी देता है कि सर्जरी का परिणाम हमेशा ऑपरेशन किये जाने वाले व्यक्ति के लिए, 100% की सीमा तक तो बिल्कुल भी नहीं, लाभदायक होगा। एकमात्र आश्वासन जो ऐसा पेशेवर दे सकता है

या निहितार्थ से समझा जा सकता है कि वह पेशे से उस शाखा में अपेक्षित कौशल रखता है जिसका वह व्यवसाय कर रहा है और उसे सौंपे गए कार्य का निष्पादन करते समय वह सक्षम होगा जिसे वह उचित योग्यता के साथ अपने कौशल का प्रयोग करेगा। पेशेवर के पास आने वाला प्रत्येक व्यक्ति यही अपेक्षा कर सकता है। इस मानक के अनुसार, एक पेशेवर को दो निष्कर्षों में से एक पर लापरवाही के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है : या तो उसके पास अपेक्षित कौशल नहीं था जिसके बारे में उसने दावा किया था, या उसने प्रस्तुत मामले में उचित योग्यता और अपने धारित कौशल के साथ कार्य नहीं किया।

23. आगे यह देखा गया कि यह तथ्य कि लापरवाही का आरोपित प्रतिवादी ने सामान्य और अनुमोदित अभ्यास के अनुसार कार्य किया, उसे आरोप से मुक्त करने के लिए पर्याप्त है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपनाई गई पद्धति का मूल्यांकन करते समय सावधानी के मानक का मूल्यांकन घटना के समय उपलब्ध ज्ञान के आधार पर, न कि मुकदमें की तारीख के आधार पर किया जाता है। यह माना गया कि जिस व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है वह लापरवाह है या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए लागू किया जाने वाला मानक उस पेशे में सामान्य कौशल का प्रयोग करने वाले एक सामान्य सक्षम व्यक्ति का होगा। प्रत्येक पेशेवर के लिए उस शाखा में उच्चतम स्तर की विशेषज्ञता या कौशल रखना संभव नहीं है, जिसमें वह व्यवसाय करता है। माननीय न्यायमूर्ति ने **हक्स बनाम कोल** (1968) 118 न्यू एलजे 469 में की गई लॉर्ड डेनिंग की सूक्ष्म टिप्पणियों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया, अर्थात, ''एक चिकित्सा व्यवसायी को केवल इसलिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि चीजें दुर्घटना या दुस्साहस से या गलती से या उपचार के एक उचित तरीके को दूसरे की प्राथमिकता में चुनने का निर्णय के कारण हो गई। एक चिकित्सा व्यवसायी को केवल तभी उत्तरदायी ठहराया जाएगा जब उसका आचरण उसके क्षेत्र में एक उचित सक्षम व्यवसायी के मानकों से नीचे होगा।

24. हमारे विचार में, मामले के तथ्यों की जांच कानून के उपरोक्त सिद्धांत के आलोक में की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या अपीलकर्ता जो पेशे से डॉक्टर था और जिसने प्रत्यर्थी सं0–1 का इलाज और सर्जरी किया उसपर दिनांक 08.08.1996 को उनके पिताशय की सामान्य सर्जरी करने में लापरवाही बरतने का आरोप लगाया जा सकता है।

25. इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता एक पेशेवर रूप से प्रशिक्षित चिकित्सक है और उसने 1976 में लंदन में इस विषय में स्नातकोत्तर डिग्री एफआरसीएस प्राप्त की है और सात वर्षों तक वहां (यूके) काम किया है और शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में पर्याप्त अनुभव अर्जित किया है। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि वर्ष 1976/1977 से वह दिनांक 08.08.1996 को प्रत्यर्थी सं0–1 का ऑपरेशन करने की तारीख तक भारत में शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में रहे है।

26. ये निर्विवाद तथ्य, हमारी राय में, स्पष्ट रूप से साबित करते है कि अपीलकर्ता इस क्षेत्र में अनुभव के साथ एक योग्य वरिष्ट डॉक्टर है और उसके पास पिताशय की सर्जरी करने के लिए विषय में अपेक्षित ज्ञान और कौशल भी था।

27. इसमें कोई विवाद नहीं है कि प्रारंभ में उन्होंने सलाह के अनुसार प्रत्यर्थी सं0–1 के पिताशय की लेप्रोस्कोपी सर्जरी हेतु अग्रसर हुये, लेकिन ऐसा करते समय उन्हें पिताशय पर कुछ सूजन और चिपका होना दिखाई दिया और इसलिए, उन्होंने ऐसा करने का निर्णय लिया और उन्होंने वास्तव में प्रत्यर्थी सं0–1 की पिताशय को हटाने के लिए पारंपरिक सर्जरी की।

28. प्रत्यर्थी सं0–1 के अनुसार, अपीलकर्ता ऐसा नहीं कर सकता था क्योंकि उन्होंने यह सर्जरी करने के लिए अपनी सहमति नहीं दी थी। दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थी सं0–1 के अनुसार, उसने केवल ''लेप्रोस्कोपी सर्जरी'' करने के लिए लिखित रूप से अपनी स्पष्ट सहमति दी थी, लेकिन अपीलकर्ता ने ''लेप्रोस्कोपी सर्जरी'' करने के बजाय पारंपरिक सर्जरी की और उस प्रक्रिया में

उसका पिताशय हटा दिया। प्रत्यर्थी सं0–1 के अनुसार, इस कारण से अपीलकर्ता की ओर से लापरवाही का एक स्पष्ट मामला बनता है जो प्रत्यर्थी सं0–1 को धन के रूप में मुआवजे का दावा करने का अधिकार देता है।

29. राज्य आयोग ने प्रत्यर्थी सं0–1 की उपरोक्त दलील को स्वीकार नहीं किया, परन्तु इस दलील को राष्ट्रीय आयोग का समर्थन मिला जिसमें अपीलकर्ता को सर्जरी करने में अपने कर्तव्य के पालन में लापरवाही का दोषी ठहराया गया। हम नीचे उल्लिखित एक से अधिक कारणों से इस मामले पर राष्ट्रीय आयोग के तर्क से सहमत नहीं है।

30. सर्वप्रथम एसएलपी पेपर बुक के पेज 282 पर दिनांक 07.08.1997 के सहमति फॉर्म का खंड 4, जिस पर प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए है, जिसमें स्पष्ट शब्दों में सर्जरी करने वाले डॉक्टर को अधिकार देता है कि किसी आपातकालीन स्थिति में या यदि ऑपरेशन के दौरान किसी प्रत्याशित स्थिति का पता चलता है, तो रक्त आधान या रक्त प्लाज्मा को दिया जाना आवश्यक या उचित विकल्प के रूप में या इस तरह के अतिरिक्त ऑपरेशन या प्रक्रिया किया जा सकता है।

31. दूसरा, सहमति प्रपत्र के खंड 4 के अनुसार, अपीलकर्ता लेप्रोस्कोपी करते समय कुछ असामानताएं देखने के बाद लेप्रोस्कोपी सर्जरी के विकल्प के रूप में पारंपरिक सर्जरी करने का हकदार था, जब प्रत्यर्थी सं0–1 की देखभाल करने वाले डॉक्टर के समूह के लिए पिताशय की लेप्रोस्कोपी को आगे भी जारी रखना संभव नहीं होगा।

32. दूसरे शब्दों में, हमारा विचार है कि खंड 4 में निहित प्राधिकृति के आलोक में पारंपरिक सर्जरी करने के लिए किसी अन्य सहमति प्रपत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि प्रतिस्थापिक ऑपरेशन उसी अंग का था जिसके लिए प्रत्यर्थी को सलाह दी गई थी जो सिवाय रोग से छुटकारा पाने के लिए चिकित्सा क्षेत्र में ज्ञात एक अन्य प्रसिद्ध विधि की भिन्नता का था।

33. तीसरा, रिकॉर्ड पर एक साक्ष्य है और हम उन साक्ष्यों को स्वीकार करने के इच्छुक है कि अपीलकर्ता ने लेप्रोस्कोपी करते समय देखा कि पिताशय में कुछ सूजन और आसंजन थी, वह शल्य कक्ष से बाहर आया और प्रत्यर्थी सं0–1 के पति को प्रत्यर्थी नं0–1 के पिताशय की स्थिति के बारे में सूचित किया जो शल्य कक्ष के बाहर बैठा था और प्रतिस्थापिक ऑपरेशन करने के लिए उसकी सहमति मांगी। प्रत्यर्थी सं0–1 के पति द्वारा दी गई सहमति के बाद ही अपीलकर्ता पारंपरिक सर्जरी करने के लिए अग्रसर हुआ।

34. हमारी राय में, अपीलकर्ता द्वारा अपने साक्ष्य में बताए गए इस तथ्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। हमारी राय में, यह किसी भी विवेकशील चिकित्सक का स्वभाविक आचरण और व्यवहार है, जो ऑपरेशन कर रहा था वह रोगी के साथ में देखभाल करने वाले को रोगी के शरीर में पाई गई किसी भी अनियमित्ता से अवगत कराये और फिर ऑपरेशन को पूरा करने के लिए तदनुसार आगे बढ़ सके।

35. प्रत्यर्थी सं0–1 का यह मामला नहीं है कि उसका पति न तो उस दिन अस्पताल में मौजूद था , न ही वह ऑपरेशन थिएटर के बाहर बैठा था और न ही वह उस दिन कभी अपीलकर्ता से मिला था।

36. हमारी राय में इसलिए प्रत्यर्थी सं0–1 के पिताशय के प्रतिस्थापित ऑपरेशन करने के लिए अपीलकर्ता को सहमति देने का एक स्पष्ट मामला बनता था जो अपीलकर्ता को पारंपरिक सर्जरी करने में सक्षम बनाया गया था जिसे उसने वास्तव में किया था।

37. राष्ट्रीय आयोग ने अपीलकर्ता के खिलाफ सहमति के मामले पर निष्कर्ष देते समय इस न्यायालय द्वारा **समीरा कोहली बनाम डॉ. प्रभा मनचंदा और अन्य** (2008) 2 एससीसी 1. के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। हमारे विचार में, उक्त निर्णय ने स्वयं निर्णय के पैरा 49 में देखे गए मामलों को अपवाद बना दिया है जो निम्नानुसार हैः

''इस नियम का एकमात्र अपवाद वह है जहां अतिरिक्त प्रक्रिया यद्यपि अनधिकृत हो वह मरीज के जीवन को बचाने या उसके स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक हो और जब तक मरीज होश में नहीं आ जाता और निर्णय नहीं ले लेता, तब तक ऐसी अनधिकृत प्रक्रिया में देरी करना अनुचित होगा।''

38. हमारी राय में, अपीलकर्ता का मामला भी इस न्यायालय द्वारा उल्लिखित अपवादित श्रेणी में आता है क्योंकि अपीलकर्ता ने लेप्रोस्कोपी सर्जरी करते समय पित्ताशय में असामान्यताओं को देखा था और पारंपरिक सर्जरी करने के लिए आगे बढ़ा था और वह भी प्रत्यर्थी सं0–1 का पति से नई सहमति प्राप्त करने के पश्चात्। दूसरे शब्दों में, यह अपीलकर्ता का अनधिकृत कार्य नहीं था और वह प्रत्यर्थी सं0–1 की मूल सहमति खंड 4 के साथ–साथ प्रत्यर्थी सं0–1 के पति द्वारा दी गई आगे की सहमति के आधार पर कानूनी रूप से कार्यान्वित कर सका था।

39. इसके अलावा, हमने यह भी पाते है कि प्रत्यर्थी सं0–1 ने कभी भी अपीलकर्ता या / और प्रतिवादी प्रत्यर्थी सं0–2 अस्पताल के समक्ष ''सहमति मुद्दे'' पर आपत्ति नहीं उठाई और शिकायत में पहली बार उसने इस मामले को उठाया था और अपीलकर्ता से मुआवजे का दावा करने के लिए एक आधार बनाया। किसी ने भी उन्हें या उनके पति को सर्जरी के तुरंत बाद सहमति का मामला उठाने से नहीं रोका, जबकि वह एक अन्तःवासी मरीज के रूप में अस्पताल में थी और यहां तक कि डिस्चार्ज होने के बाद भी, जो कि किसी भी मरीज का स्वभाविक आचरण है। हालांकि, ऐसा नहीं किया गया।

40. यह विवाद में नहीं है कि प्रत्यर्थी सं0–1 ऑपरेशन करते समय या /और उसके बाद अपीलकर्ता की किसी विशिष्ट प्रकार की लापरवाही को साबित करने में विफल रहा। वास्तव में, यहां तक कि राष्ट्रीय आयोग ने भी कंडिका 18 में इस मुद्दे को निम्निलिखित शब्दों में अपीलकर्ता के पक्ष में अभिनिर्धारित किया है:

''18 शिकायतकर्ता की एक अन्य शिकायत यह भी है कि दिनांक 07.08.96 से 18.08.96 तक अस्पताल में भर्ती रहने के दौरान उसका ईलाज सावधानीपूर्वक नहीं किया गया था। ऐसा कोई विशिष्ट उदाहरण अभिलेख में नहीं लाया गया है जो सर्जन या नर्सिंग होम की ओर से लापरवाही या असावधानी के बराबर हो और इसलिए, हम यह मानने में असमर्थ है कि नर्सिंग में रहने के दौरान लापरवाही के सामान सावधानी में कोई कमी थी। जिसके लिए या तो सर्जन या नर्सिंग होम को उत्तरदायी ठहराया जा सके।''

41. इसी तरह राष्ट्रीय आयोग ने कंडिका 19 में अपीलकर्ता के पक्ष में अभिनिर्धारित किया है कि 11 महीने (04.06.1997) के बाद गंगा राम अस्पताल में दूसरे ऑपरेशन में जो पत्थर निकाले गए थे, वे वही थे जिन्हें अपीलकर्ता ने दिनांक 08.08.1996 को पहली सर्जरी हुये देखा था और अंदर ही रह गये थे। दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थी सं0–1 किसी भी चिकित्सीय साक्ष्य की सहायता से यह साबित करने में विफल रहा कि जो पथरी 11 महीने के बाद की गई दूसरी सर्जरी में देखी गई थी, वही पथरी थी जिसे अपीलकर्ता पिताशय से निकालने में विफल रहा था। यहां नीचे कंडिका 19 में राष्ट्रीय आयोग के निष्कर्ष को नोट करना उचित है।

''..... हमने अभिलेख पर रखी गई सामग्री से पहले ही पाया है कि निश्चित रूप से यह कहना संभव नहीं है कि सर गंगा राम अस्पताल में शिकायतकर्ता की पित्त नली से जो भी पथरी निकाली गई थी, वह वही थी जिसके लिए सर्जन के हाथों से कोलेसिस्टेक्टोमी की गई थी और इसलिए, सर्जन की ओर से एकमात्र चूक जो हम पा सकते है वह यह है कि उसने शिकायतकर्ता की समस्या पर उस तरह का ध्यान देने की परवाह नहीं की, जब उसने उसके कोलेसिस्टेक्टोमी की प्रक्रिया के बाद विशेष रूप से अप्रैल, मई 1997 के दौरान उससे परामर्श किया था। ..... ''

42. यदि ऐसा होता, तो अपीलकर्ता को पत्थरियों को हटाने में विफलता के लिए उन्हें इतने लंबे समय तक पित्ताशय में रहने देने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता था। इस तथ्य को साबित करने के लिए प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा कोई चिकित्सीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

43. हमारी राय में, पिताशय की सर्जरी (पारंपरिक सर्जरी) करने में अपीलकर्ता की ओर से ''व्यक्त सहमति की अदेयता'' के अतिरिक्त किसी विशेष प्रकार की लापरवाही को साबित करने के लिए प्रत्यर्थी सं0–1 द्वारा किसी भी विशेषज्ञ का कोई चिकित्सीय साक्ष्य पेश नहीं किया गया। इस मुद्दे पर हम पहले ही ऊपर विचार कर चुके है और इसमें कोई गुण नहीं पाया गया। हमारे विचार मे, प्रत्यर्थी सं0–1 पर सर्जरी करने में अपीलकर्ता की ओर से एक विशिष्ट प्रकार की लापरवाही को साबित करने का कानूनी दायित्व था और यह भी साबित करना आवश्यक था कि घर लौटने पर उसे बाद में कोई बीमारी हुई हो जैसे कि अपीलकर्ता द्वारा पारंपरिक सर्जरी के अनुचित रूप से करने के कारण ही उसे पीलिया, पेचिश, बुखार, वजन में कमी आदि का सामना करना पड़ा और यदि सर्जरी सफल रही होती, तो उसे इन किसी भी प्रकार की बीमारियों का सामना नहीं करना पड़ता।

44. हमारी राय में, किसी डॉक्टर पर उसकी लापरवाही के लिए मुकदमा चलाने के लिए इन दो कारकों का सीधा संबंध होना चाहिए। सर्जरी के बाद मरीज द्वारा बीमारी की पीड़ा एक बात है। यह चिकित्सा न्यायशास्त्र में ज्ञात असंख्य कारणों से हो सकता है। जबकि सर्जरी के अनुचित रूप से करने के कारण परिणामस्वरूप ऐसी किसी भी बीमारी का पीड़ित होना और वह भी डॉक्टर की ओर से लापरवाही की सीमा के साथ एक अलग बात है। किसी डॉक्टर की लापरवाही के मामले को साबित करने के लिए वाद को साबित करने के लिए क्षेत्र के विशेषज्ञो के चिकित्सीय साक्ष्य की आवश्यकता होती है। केवल पहले तथ्य को साबित करना पर्याप्त नहीं है।

45. हमारी सुविचारित राय में, प्रत्यर्थी सं0–1 यह साबित करने में सक्षम नहीं था कि दिनांक 08.08.1996 को अस्पताल से घर लौटने के बाद उसे जो बीमारियां हुई वे अपीलकर्ता द्वारा की गई दोषपूर्ण सर्जरी के परिणामस्वरूप थी।

46. प्रत्यर्थी सं0–1 (शिकायतकर्ता) के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि अपीलकर्ता द्वारा की गई सर्जरी के कारण प्रत्यर्थी सं0–1 को अत्यधिक पीड़ा हुई और इसलिए, उसे राष्ट्रीय आयोग द्वारा मुआवजा दिया जाना उचित था।

47. प्रत्यर्थी सं0–1 के विद्वान अधिवक्ता ने भी डिस्चार्ज सर्टिफिकेट पर भरोसा जताया, जिसमें उनके अनुसार, उल्लेख किया गया है कि प्रत्यर्थी सं0–1 पर लेप्रोस्कोपी सर्जरी की गई थी। इस आधार पर, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी सं0–1 ने सामान्य सर्जरी करने के लिए अपनी सहमति नहीं दी थी।

48. सहमति देने के मुद्दे सहित मामलें में उत्पन्न होने वाले मुद्दो पर ऊपर की गई विस्तृत चर्चा के आलोक में , हम प्रत्यर्थी सं0–1 के विद्वान अधिवक्ता की उपरोक्त दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ है।

49. भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश के शब्दों को याद करना उचित है जब उन्होंने जैकब मैथ्यू के मामले (उपरोक्त) में कहा था जो इस प्रकार है:

''चिकित्सा पेशे के संदर्भ में लापरवाही का विषय आवश्यक रूप से एक अलग उपचार की मांग करता है। किसी अप्रिय घटना के लिए दोषी ठहराने के लिए किसी मानव कलाकार की तलाश करने की एक उल्लेखनीय प्रवृति है, एक ऐसी प्रवृति जो सजा देने की इच्छा से निकटता से जुड़ी हुई है। चीजें गलत हो गई है और इसलिए इसका जवाब देने के लिए किसी को ढूंढना होगा। एक अनुभवजन्य अध्ययन से पता चलता है कि किसी दुर्घटना की पृष्ठभूमि अक्सर अनुमान से कहीं अधिक जटिल होती है। यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि परिणाम के लिए वास्तविक दोष को बहुत सावधानी से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। किसी चिकित्सीय दुर्घटना या विफलता के लिए, जिम्मेदारी चिकित्सक की हो सकती हैं, और समान रूप से नहीं भी हो सकती है। सिस्टम की अपर्याप्तता, मामले की विशिष्ट परिस्थितियां, स्वयं मानव मनोविज्ञान की प्रकृति और सरासर संयोग ने मिलकर ऐसा परिणाम उत्पन्न किया होगा जिसमें डॉक्टर का योगदान या तो अपेक्षाकृति या पूरी से निर्दोष है। मानव शरीर और उसकी कार्यप्रणाली किसी अत्यधिक जटिल मशीन से कम नहीं है। चिकित्सा विज्ञान की जटिलताओं के साथ, एक संचालक यानी डॉक्टर के खिलाफ गलत धारणा, गलतफहमी और गलत आरोपों की गुंजाईश से इंकार नहीं किया जा सकता है। किसी के पास सर्वोतम या आदर्श अभ्यास की धारणाए हो सकती है जो इस वास्तवकिता से भिन्न हैं कि चिकित्सा कार्य कैसे किया जाता है या वास्तविक जीवन में डॉक्टर कैसे कार्य करता है। जरूरी आवश्यकता और सीमित संसाधनों के कारकों पर विचार करने से इन्कार नहीं किया जा सकता। चिकित्सीय लापरवाही के मामलें से निपटने के लिए चिकित्सा के व्यावहारिक पक्ष की गहरी समझ की आवश्यकता होती है। लापरवाही बरतने पर किसी पेशेवर को उसके कार्य या चूक के लिए उत्तरदायी ठहराने का उद्देश्य जीवन को सुरक्षित बनाना और भविष्य में लापरवाही की पुनरावृति की संभावना को खत्म करना है। मानव शरीर और चिकित्सा विज्ञान, दोनों ही इतने जटिल है कि इन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता। एक चिकित्सा पेशेवर की कार्रवाई या निष्क्रियता से जुडी लापरवाही के अस्तित्व के पक्ष में विचार करने के लिए एक पेशेवर के काम की गईराई के साथ–साथ काम की प्रकृति औार संयोग से हुई त्रुटियों की गहन समझ की आवश्यकता होती है, जिसमें सदोषता का तत्व आवश्यक रूप से शामिल नहीं होता है।

50. हमारे द्वारा ऊपरोक्त अभिनिर्धारण के आलोक में हम राष्ट्रीय आयोग के तर्क और निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकते। परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और तदानुसार स्वीकृत की जाती है। विवादित आदेश को अपास्त किया जाता है और राज्य आयोग द्वारा पारित आदेश को बहाल किया जाता है।

अपील स्वीकृत।

Rajiv Tripathi